

रामचरित्मानस

उत्तरकाण्ड

काकभुशुण्डि का अपनी पूर्व जन्म कथा और कलि महिमा कहना

चौपाई :

*** सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई। कहउँ जथामति कथा सुहाई।। जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोही।
सोउ सब कथा सुनावउँ तोही॥1॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज गरुड़जी! श्री रघुनाथजी की प्रभुता सुनिए। मैं अपनी बुद्धि के अनुसार वह सुहावनी
कथा कहता हूँ। हे प्रभो! मुझे जिस प्रकार मोह हुआ वह सब कथा भी आपको सुनाता हूँ॥॥

*** राम कृपा भाजन तुम्ह ताता। हरि गुन प्रीति मोहि सुखदाता॥ ताते नहिं कछु तुम्हहि दुरावउँ।
परम रहस्य मनोहर गावउँ॥2॥

भावार्थ:-

हे ताता! आप श्री रामजी के कृपा पात्र हैं। श्री हरि के गुणों में आपकी प्रीति है, इसीलिए आप मुझे
सुख देने वाले हैं। इसी से मैं आप से कुछ भी नहीं छिपाता और अत्यंत रहस्य की बातें आपको
गाकर सुनाता हूँ॥॥

***सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ॥ संसृत मूल सूलप्रद नाना।
सकल सोक दायक अभिमाना॥3॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी का सहज स्वभाव सुनिए। वे भक्त में अभिमान कभी नहीं रहने देते, क्योंकि
अभिमान जन्म-मरण रूप संसार का मूल है और अनेक प्रकार के क्लेशों तथा समस्त शोकों का
देने वाला है॥3॥

*** ताते करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अति भूरी॥ जिमि सिसु तन ब्रन होई गोसाईं।
मातु चिराव कठिन की नाई॥4॥

भावार्थ:-

इसीलिए कृपानिधि उसे दूर कर देते हैं, क्योंकि सेवक पर उनकी बहुत ही अधिक ममता है। हे
गोसाईं! जैसे बच्चे के शरीर में फोड़ा हो जाता है, तो माता उसे कठोर हृदय की भाँति चिरा
डालती है॥4॥

दोहा :

***जदपि प्रथम दुख पावइ रोवइ बाल अधीर। ब्याधि नास हित जननी गनति न सो सिसु पीर॥

74 क॥

भावार्थ:-

यद्यपि बच्चा पहले (फोड़ा चिराते समय) दुःख पाता है और अधीर होकर रोता है, तो भी रोग के नाश के लिए माता बच्चे की उस पीड़ा को कुछ भी नहीं गिनती (उसकी परवाह नहीं करती और फोड़े को चिरवा ही डालती है)॥ 74 (क)॥

***तिमि रघुपति निज दास कर हरहिं मान हित लागि। तुलसिदास ऐसे प्रभुहि कस न भजहु भ्रम त्यागि॥ 74 ख॥

भावार्थ:-

उसी प्रकार श्री रघुनाथजी अपने दास का अभिमान उसके हित के लिए हर लेते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि ऐसे प्रभु को भ्रम त्यागकर क्यों नहीं भजते॥ 74 (ख)॥

चौपाई :

***राम कृपा आपनि जइताई। कहउँ खगेस सुनहु मन लाई॥ जब जब राम मनुज तनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं॥॥

भावार्थ:-

हे हे गरुड़जी! श्री रामजी की कृपा और अपनी जड़ता (मूर्खता) की बात कहता हूँ मन लगाकर सुनिए। जब-जब श्री रामचंद्रजी मनुष्य शरीर धारण करते हैं और भक्तों के लिए बहुत सी लीलाएँ करते हैं॥१॥

***तब तब अवधपुरी में जाऊँ। बालचरित बिलोकि हरषाऊँ॥ जन्म महोत्सव देखऊँ जाई। बरष पाँच तहँ रहँ लोभाई॥२॥

भावार्थ:-

तब-तब मैं अयोध्यापुरी जाता हूँ और उनकी बाल लीला देखकर हर्षित होता हूँ। वहाँ जाकर मैं जन्म महोत्सव देखता हूँ और (भगवान् की शिशु लीला में) लुभाकर पाँच वर्ष तक वहीं रहता हूँ॥२॥

***इष्टदेव मम बालक रामा। सोभा बपुष कोटि सत कामा॥ निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करउँ उरगारी॥३॥

भावार्थ:-

बालक रूप श्री रामचंद्रजी मेरे इष्टदेव हैं, जिनके शरीर में अरबों कामदेवों की शोभा है। हे गरुड़जी! अपने प्रभु का मुख देखदेखकर मैं नेत्रों को सफल करता हूँ॥३॥

***लघु बायस बपु धरि हरि संग। देखउँ बालचरित बहु रंगा॥॥

भावार्थ:-

छोटे से कौए का शरीर धरकर और भगवान् के साथ-साथ फिरकर में उनके भाँति-भाँति के बाल चरित्रों को देखा करता हूँ॥४॥

दोहा :

*** लरिकाईं जहँ जहँ फिरहिं तहँ तहँ संग उड़ाउँ। जूठनि परइ अजिर महँ सो उठाई करि खाउँ॥

75 क॥

भावार्थ:-

लड़कपन में वे जहाँ-जहाँ फिरते हैं, वहाँ-वहाँ में साथ-साथ उड़ता हूँ और आँगन में उनकी जो जूठन पड़ती है, वही उठाकर खाता हूँ॥ 75 (क)॥

*** एक बार अतिसय सब चरित किए रघुबीर। सुमिरत प्रभु लीला सोइ पुलकित भयउ सरीर॥

75 ख॥

भावार्थ:-

एक बार श्री रघुवीर ने सब चरित्र बहुत अधिकता से किए। प्रभु की उस लीला का स्मरण करते ही काकभुशुण्डिजी का शरीर (प्रेमानन्दवश) पुलकित हो गया॥ 75 (ख)॥

चौपाई :

*** कहइ भसुंड सुनहु खगनायक। राम चरित सेवक सुखदायक॥ नृप मंदिर सुंदर सब भाँती।

खचित कनक मनि नाना जाती॥१॥

भावार्थ:-

भुशुण्डिजी कहने लगे- हे पक्षीराज! सुनिए, श्री रामजी का चरित्र सेवकों को सुख देने वाला है। (अयोध्या का) राजमहल सब प्रकार से सुंदर है। सोने के महल में नाना प्रकार के रत्न जड़े हुए हैं॥१॥

*** बरनि न जाइ रुचिर अँगनाई। जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई॥ बाल बिनोद करत रघुराई।

बिचरत अजिर जननि सुखदाई॥२॥

भावार्थ:-

सुंदर आँगन का वर्णन नहीं किया जा सकता, जहाँ चारों भाई नित्य खेलते हैं। माता को सुख देने वाले बालविनोद करते हुए श्री रघुनाथजी आँगन में विचर रहे हैं॥२॥

*** मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा॥ नव राजीव अरुन मृदु चरना।

पदज रुचिर नख ससि दुति हरना॥३॥

भावार्थ:-

मरकत मणि के समान हरिताभ श्याम और कोमल शरीर है। अंग-अंग में बहुत से कामदेवों की शोभा छाई हुई है। नवीन (लाल) कमल के समान लाल-लाल कोमल चरण हैं। सुंदर अँगुलियाँ हैं और नख अपनी ज्योति से चंद्रमा की कांति को हरने वाले हैं॥३॥

*** ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रवकारी॥ चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि

किंकिनि कल मुखर सुहाई॥4॥

भावार्थ:-

(तलवे में) वज्रादि (वज्र, अंकुश, ध्वजा और कमल) के चार सुंदर चिह्न हैं, चरणों में मधुर शब्द करने वाले सुंदर नूपुर हैं मणियों, रत्नों से जड़ी हुई सोने की बनी हुई सुंदर करधनी का शब्द सुहावना लग रहा है॥4॥

दोहा :

*** रेखा त्रय सुंदर उदर नाभी रुचिर गँभीर। उर आयत भ्राजत विविधि बाल बिभूषण चीर॥ 76॥

भावार्थ:-

उदर पर सुंदर तीन रेखाएँ (त्रिवली) हैं, नाभि सुंदर और गहरी है। विशाल वक्षःस्थल पर अनेकों प्रकार के बच्चों के आभूषण और वस्त्र सुशोभित हैं॥ 76॥

चौपाई :

*** अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषण सुंदर॥ कंध बाल केहरि दर ग्रीवा। चारु चिबुक आनन छबि सीवा॥1॥

भावार्थ:-

लाल-लाल हथेलियाँ, नख और अँगुलियाँ मन को हरने वाले हैं और विशाल भुजाओं पर सुंदर आभूषण हैं। बालसिंह (सिंह के बच्चे) के से कंधे और शंख के समान (तीन रेखाओं से युक्त) गला है। सुंदर ठुंडी है और मुख तो छवि की सीमा ही है॥1॥

*** कलबल बचन अधर अरुनारे। दुड़ दुड़ दसन बिसद बर बारे॥ ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा॥2॥

भावार्थ:-

कलबल (तोतले) वचन हैं, लाल-लाल होठ हैं। उज्ज्वल, सुंदर और छोटी-छोटी (ऊपर और नीचे) दो-दो दंतुलियाँ हैं। सुंदर गाल, मनोहर नासिका और सब सुखों को देने वाली चंद्रमा की (अथवा सुख देने वाली समस्त कलाओं से पूर्ण चंद्रमा की) किरणों के समान मधुर मुस्कान है॥2॥

*** नील कंज लोचन भव मोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन॥ बिकट भ्रुकुटि सम श्रवन सुहाए। कुंचित कच मेचक छबि छाए॥3॥

भावार्थ:-

नीले कमल के समान नेत्र जन्म-मृत्यु (के बंधन) से छुड़ाने वाले हैं। ललाट पर गोरोचन का तिलक सुशोभित है। भौंहें टेढ़ी हैं, कान सम और सुंदर हैं, काले और घुँघराले केशों की छबि छा रही है॥3॥

*** पीत झीनि झगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही॥ रूप रासि नृप अजिर बिहारी। नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारी॥4॥

भावार्थ:-

पीली और महीन झँगुली शरीर पर शोभा दे रही है। उनकी किलकारी और चितवन मुझे बहुत ही प्रिय लगती है। राजा दशरथजी के आँगन में विहार करने वाले रूप की राशि श्री रामचंद्रजी अपनी परछाहीं देखकर नाचते हैं,॥4॥

*** मोहि सन करहिं बिबिधि बिधि क्रीड़ा। बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा॥ किलकत मोहि धरन जब धावहिं। चलउँ भागि तब पूष देखावहिं॥5॥

भावार्थ:-

और मुझसे बहुत प्रकार के खेल करते हैं जिन चरित्रों का वर्णन करते मुझे लज्जा आती है। किलकारी मारते हुए जब वे मुझे पकड़ने दौड़ते और मैं भाग चलता, तब मुझे पूआ दिखलाते थे॥5॥

दोहा :

*** आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं। जाऊँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितइ पराहिं॥ 77 क॥

भावार्थ:-

मेरे निकट आने पर प्रभु हँसते हैं और भाग जाने पर रोते हैं और जब मैं उनका चरण स्पर्श करने के लिए पास जाता हूँ तब वे पीछे फिर-फिरकर मेरी ओर देखते हुए भाग जाते हैं॥77 (क)॥

*** प्राकृत सिसु इव लीला देखि भयउ मोहि मोह। कवन चरित्र करत प्रभु चिदानंद संदोह॥ 77 ख॥

भावार्थ:-

साधारण बच्चों जैसी लीला देखकर मुझे मोह (शंका) हुआ कि सच्चिदानंदघन प्रभु यह कौन (महत्त्व का) चरित्र (लीला) कर रहे हैं॥ 77 (ख)॥

चौपाई :

*** एतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित ब्यापी माया॥ सो माया न दुखद मोहि काहीं। आन जीव इव संसृत नाही॥1॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज! मन में इतनी (शंका) लाते ही श्री रघुनाथजी के द्वारा प्रेरित माया मुझ पर छा गई, परंतु वह माया न तो मुझे दुःख देने वाली हुई और न दूसरे जीवों की भाँति संसार में डालने वाली हुई॥॥

*** नाथ इहाँ कछु कारन आना। सुनहु सो सावधान हरिजाना॥ ग्यान अखंड एक सीताबर। माया बस्य जीव सचराचर॥2॥

भावार्थ:-

हे नाथ! यहाँ कुछ दूसरा ही कारण है। हे भगवान् के वाहन गरुड़जी! उसे सावधान होकर सुनिए। एक सीतापति श्री रामजी ही अखंड मानवस्वरूप हैं और जड़-चेतन सभी जीव माया के वश हैं॥2॥

***जों सब कें रह ज्ञान एकरस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस॥ माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुन खानी॥3॥

भावार्थ:-

यदि जीवों को एकरस (अखंड) ज्ञान रहे, तो कहिए, फिर ईश्वर और जीव में भेद ही कैसा? अभिमानी जीव माया के वश है और वह (सत्त्व, रज, तम इन) तीनों गुणों की खान माया ईश्वर के वश में है॥3॥

*** परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता॥ मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥4॥

भावार्थ:-

जीव परतंत्र है, भगवान् स्वतंत्र हैं, जीव अनेक हैं, श्री पति भगवान् एक हैं। यद्यपि माया का किया हुआ यह भेद असत् है तथापि वह भगवान् के भजन बिना करोड़ों उपाय करने पर भी नहीं जा सकता॥4॥

दोहा :

***रामचंद्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान। ग्यानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान॥ 78 क॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी के भजन बिना जो मोक्ष पद चाहता है, वह मनुष्य जानवान् होने पर भी बिना पूँछ और सींग का पशु है॥ 78 (क)॥

*** राकापति षोडस उअहिं तारागन समुदाइ। सकल गिरिन्ह दव लाइअ बिनु रबि राति न जाइ॥ 78 ख॥

भावार्थ:-

सभी तारागणों के साथ सोलह कलाओं से पूर्ण चंद्रमा उदय हो और जितने पर्वत हैं उन सब में दावाग्नि लगा दी जाए, तो भी सूर्य के उदय हुए बिना रात्रि नहीं जा सकती॥ 78 (ख)॥

चौपाई :

*** ऐसेहिं हरि बिनु भजन खगेसा। मिटइ न जीवन्ह केर कलेसा॥ हरि सेवकहि न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापइ तेहि बिद्या॥1॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज! इसी प्रकार श्री हरि के भजन बिना जीवों का क्लेश नहीं मिटता। श्री हरि के सेवक को अविद्या नहीं व्यापती। प्रभु की प्रेरणा से उसे विद्या व्यापती है॥1॥

*** ताते नास न होइ दास कर। भेद भगति बाढ़इ बिहंगबर॥ भ्रम तें चकित राम मोहि देखा। बिहँसे सो सुनु चरित बिसेषा॥2॥

भावार्थ:-

हे पक्षीश्रेष्ठ! इससे दास का नाश नहीं होता और भेद भक्ति बढ़ती है। श्री रामजी ने मुझे जब भ्रम से चकित देखा, तब वे हँसे। वह विशेष चरित्र सुनिए॥2॥

*** तेहि कौतुक कर मरमु न काहूँ। जाना अनुज न मातु पिताहूँ॥ जानु पानि धाए मोहि धरना।
स्यामल गात अरुन कर चरना॥3॥

भावार्थ:-

उस खेल का मर्म किसी ने नहीं जाना, न छोटे भाइयों ने और न माता-पिता ने ही। वे श्याम शरीर और लाल-लाल हथेली और चरणतल वाले बाल रूप श्री रामजी घुटने और हाथों के बल मुझे पकड़ने को दौड़े॥3॥

*** तब मैं भागि चलेऊँ उरगारी। राम गहन कहँ भुजा पसारी॥ जिमि जिमि दूर उड़ाऊँ अकासा।
तहँ भुज हरि देखऊँ निज पासा॥4॥

भावार्थ:-

हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी! तब मैं भाग चला। श्री रामजी ने मुझे पकड़ने के लिए भुजा फैलाई। मैं जैसे-जैसे आकाश में दूर उड़ता, वैसे-वैसे ही वहाँ श्री हरि की भुजा को अपने पास देखता था॥4॥
दोहा :

*** ब्रह्मलोक लागि गयऊँ मैं चितयऊँ पाछ उड़ात। जुग अंगुल कर बीच सब राम भुजहि मोहि
तात॥ 79 क॥

भावार्थ:-

मैं ब्रह्मलोक तक गया और जब उड़ते हुए मैंने पीछे की ओर देखा, तो हे तात! श्री रामजी की भुजा में और मुझमें केवल दो ही अंगुल का बीच था॥ 79 (क)॥

*** सप्ताबरन भेद करि जहाँ लगे गति मोरि। गयऊँ तहाँ प्रभु भुज निरखि ब्याकुल भयऊँ बहोरि॥
79 ख॥

भावार्थ:-

सातों आवरणों को भेदकर जहाँ तक मेरी गति थी वहाँ तक मैं गया। पर वहाँ भी प्रभु की भुजा को (अपने पीछे) देखकर मैं व्याकुल हो गया॥ 79 (ख)॥

चौपाई :

*** मूदेऊँ नयन त्रसित जब भयऊँ। पुनि चितवत कोसलपुर गयऊँ॥ मोहि बिलोकि राम मुसुकाहीं।
बिहँसत तुरत गयऊँ मुख माहीं॥॥

भावार्थ:-

जब मैं भयभीत हो गया, तब मैंने आँखें मूँद लीं। फिर आँखें खोलकर देखते ही अवधपुरी में पहुँच गया। मुझे देखकर श्री रामजी मुस्कराने लगे। उनके हँसते ही मैं तुरंत उनके मुख में चला गया॥॥

*** उदर माझ सुनु अंडज राया। देखऊँ बहु ब्रह्मांड निकाया॥ अति बिचित्र तहँ लोक अनेका।

रचना अधिक एक ते एका॥2॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज! सुनिए, मैंने उनके पेट में बहुत से ब्रह्माण्डों के समूह देखे। वहाँ (उन ब्रह्माण्डों में) अनेकों विचित्र लोक थे, जिनकी रचना एक से एक की बढ़कर थी॥2॥

*** कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रबि रजनीसा॥ अगनित लोकपाल जम काल। अगनित भूधर भूमि बिसाला॥3॥

भावार्थ:-

करोड़ों ब्रह्माजी और शिवजी, अनगिनत तारागण, सूर्य और चंद्रमा, अनगिनत लोकपाल, यम और काल, अनगिनत विशाल पर्वत और भूमि,॥3॥

*** सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा॥। सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर। चारि प्रकार जीव सचराचर॥4॥

भावार्थ:-

असंख्य समुद्र, नदी, तालाब और वन तथा और भी नाना प्रकार की सृष्टि का विस्तार देखा। देवता, मुनि, सिद्ध, नाग, मनुष्य, किन्नर तथा चारों प्रकार के जड़ और चेतन जीव देखे॥4॥

दोहा :

*** जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ। सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाइ॥80 क॥

भावार्थ:-

जो कभी न देखा था, न सुना था और जो मन में भी नहीं समा सकता था (अर्थात् जिसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी), वही सब अद्भुत सृष्टि मैंने देखी। तब उसका किस प्रकार वर्णन किया जाए!॥80 (क)॥

*** एक एक ब्रह्मांड महुँ रहँउ बरष सत एक। एहि बिधि देखत फिरँउँ मैं अंड कटाह अनेक॥80 ख॥

भावार्थ:-

मैं एक-एक ब्रह्माण्ड में एक-एक सौ वर्ष तक रहता। इस प्रकार मैं अनेकों ब्रह्माण्ड देखता फिरा॥80 (ख)॥

चौपाई :

*** लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिष्णु सिव मनु दिसिनाता॥ नर गंधर्व भूत बेताला। किंनर निसिचर पसु खग ब्याला॥1॥

भावार्थ:-

प्रत्येक लोक में भिन्न-भिन्न ब्रह्मा, भिन्न-भिन्न विष्णु, शिव, मनु, दिक्पाल, मनुष्य, गंधर्व, भूत, वैताल, किन्नर, राक्षस, पशु, पक्षी, सर्प,॥1॥

*** देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहि भाँती॥ महि सरि सागर सर गिरि नाना।
सब प्रपंच तहँ आनइ आना॥2॥

भावार्थ:-

तथा नाना जाति के देवता एवं दैत्यगण थे। सभी जीव वहाँ दूसरे ही प्रकार के थे। अनेक पृथ्वी,
नदी, समुद्र, तालाब, पर्वत तथा सब सृष्टि वहाँ दूसरे ही दूसरी प्रकार की थी॥ 2॥

*** अंडकोस प्रति प्रति निज रूपा। दाखेउँ जिनस अनेक अनूपा॥ अवधपुरी प्रति भुवन निनारी।
सरजू भिन्न भिन्न नर नारी॥3॥

भावार्थ:-

प्रत्येक ब्रह्माण्ड में मैंने अपना रूप देखा तथा अनेकों अनुपम वस्तुएँ देखीं। प्रत्येक भुवन में
न्यारी ही अवधपुरी, भिन्न ही सरयूजी और भिन्न प्रकार के ही नर-नारी थे॥3॥

*** दसरथ कौसल्या सुनु ताता। बिबिध रूप भरतादिक भ्राता॥ प्रति ब्रह्मांड राम अवतारा। देखेउँ
बालबिनोद अपारा॥4॥

भावार्थ:-

हे तात! सुनिए, दशरथजी, कौसल्याजी और भरतजी आदि भाई भी भिन्न-भिन्न रूपों के थे। मैं
प्रत्येक ब्रह्माण्ड में रामावतार और उनकी अपार बाल लीलाएँ देखता फिरता॥4॥

दोहा :

*** भिन्न भिन्न में दीख सबु अति बिचित्र हरिजान। अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु राम न देखेउँ
आन॥81 क॥

भावार्थ:-

हे हरिवाहन! मैंने सभी कुछ भिन्न-भिन्न और अत्यंत विचित्र देखा। मैं अनगिनत ब्रह्माण्डों में
फिरा, पर प्रभु श्री रामचंद्रजी को मैंने दूसरी तरह का नहीं देखा॥81 (क)॥

*** सोइ सिसुपन सोइ सोभा सोइ कृपाल रघुबीर। भुवन भुवन देखत फिरउँ प्रेरित मोह समीर॥81
ख॥

भावार्थ:-

सर्वत्र वही शिशुपन, वही शोभा और वही कृपालु श्री रघुवीर इस प्रकार मोह रूपी पवन की प्रेरणा
से मैं भुवन-भुवन में देखता-फिरता था॥81 (ख)॥

चौपाई :

*** भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका। बीते मनहुँ कल्प सत एका॥ फिरत फिरत निज आश्रम आयउँ।
तहँ पुनि रहि कछु काल गवाँयउँ॥1॥

भावार्थ:-

अनेक ब्रह्माण्डों में भटकते मुझे मानो एक सौ कल्प बीत गए। फिरता-फिरता मैं अपने आश्रम
में आया और कुछ काल वहाँ रहकर बिताया॥1॥

*** निज प्रभु जन्म अवध सुनि पायउँ। निर्भर प्रेम हरषि उठि धायउँ॥ देखउँ जन्म महोत्सव जाई। जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई॥2॥

भावार्थ:-

फिर जब अपने प्रभु का अवधपुरी में जन्म (अवतार) सुन पाया, तब प्रेम से परिपूर्ण होकर मैं हर्षपूर्वक उठ दौड़ा। जाकर मैंने जन्म महोत्सव देखा, जिस प्रकार मैं पहले वर्णन कर चुका हूँ॥2॥

*** राम उदर देखेउँ जग नाना। देखत बनइ न जाइ बखाना॥ तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना। माया पति कृपाल भगवाना॥3॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी के पेट में मैंने बहुत से जगत् देखे, जो देखते ही बनते थे, वर्णन नहीं किए जा सकते। वहाँ फिर मैंने सुजान माया के स्वामी कृपालु भगवान् श्री राम को देखा॥3॥

*** करउँ बिचार बहोरि बहोरी। मोह कलिल ब्यापित मति मोरी॥ उभय घरी महँ मैं सब देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह बिसेषा॥4॥

भावार्थ:-

मैं बार-बार विचार करता था। मेरी बुद्धि मोह रूपी कीचड़ से व्याप्त थी। यह सब मैंने दो ही घड़ी में देखा। मन में विशेष मोह होने से मैं थक गया॥4॥

दोहा :

*** देखि कृपाल बिकल मोहि बिहँसे तब रघुबीर। बिहँसतहीं मुख बाहेर आयउँ सुनु मतिधीर॥82 क॥

भावार्थ:-

मुझे व्याकुल देखकर तब कृपालु श्री रघुवीर हँस दिए। हे धीर बुद्धि गरुड़जी सुनिए, उनके हँसते ही मैं मुँह से बाहर आ गया॥82 (क)॥

*** सोइ लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम। कोटि भाँति समुझावउँ मनु न लहइ बिश्राम॥82 ख॥

भावार्थ:-

श्री रामचंद्रजी मेरे साथ फिर वही लड़कपन करने लगे। मैं करोड़ों (असंख्य) प्रकार से मन को समझाता था, पर वह शांति नहीं पाता था॥82 (ख)॥

चौपाई :

*** देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई॥ धरनि परेउँ मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता॥1॥

भावार्थ:-

यह (बाल) चरित्र देखकर और पेट के अंदर (देखी हुई) उस प्रभुता का स्मरण कर मैं शरीर की सुध भूल गया और हे आर्तजनों के रक्षक रक्षा कीजिए, रक्षा कीजिए, पुकारता हुआ पृथ्वी पर गिर

पड़ा। मुख से बात नहीं निकलती थी॥1॥

*** प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी॥ कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ।
दीनदयाल सकल दुख हरेऊ॥2॥

भावार्थ:-

तदनन्तर प्रभु ने मुझे प्रेमविह्वल देखकर अपनी माया की प्रभुता (प्रभाव) को रोक लिया। प्रभु ने अपना करकमल मेरे सिर पर रखा। दीनदयालु ने मेरा संपूर्ण दुःख हर लिया॥2॥

*** कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा। सेवक सुखद कृपा संदोहा॥ प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी।
मन महँ होइ हरष अति भारी॥3॥

भावार्थ:-

सेवकों को सुख देने वाले, कृपा के समूह (कृपामय) श्री रामजी ने मुझे मोह से सर्वथा रहित कर दिया। उनकी पहले वाली प्रभुता को विचार-विचारकर (याद कर-करके) मेरे मन में बड़ा भारी हर्ष हुआ॥3॥

*** भगत बछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिसेषी॥ सजल नयन पुलकित कर जोरी।
कीन्हिँ बहु बिधि बिनय बहोरी॥4॥

भावार्थ:-

प्रभु की भक्तवत्सलता देखकर मेरे हृदय में बहुत ही प्रेम उत्पन्न हुआ। फिर मैंने (आनंद से) नेत्रों में जल भरकर, पुलकित होकर और हाथ जोड़कर बहुत प्रकार से विनती की॥4॥

दोहा :

*** सुनि सप्रेम मम बानी देखि दीन निज दास। बचन सुखद गंभीर मृदु बोले रमानिवास॥83 क॥

भावार्थ:-

मेरी प्रेमयुक्त वाणी सुनकर और अपने दास को दीन देखकर रमानिवास श्री रामजी सुखदायक, गंभीर और कोमल वचन बोले-॥83 (क)॥

*** काकभसुंडि मागु बर अति प्रसन्न मोहि जानि। अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोच्छ सकल
सुख खानि॥83 ख॥

भावार्थ:-

हे काकभुशुण्डि! तू मुझे अत्यंत प्रसन्न जानकर वर माँग। अणिमा आदि अष्ट सिद्धियाँ, दूसरी ऋद्धियाँ तथा संपूर्ण सुखों की खान मोक्ष॥83 (ख)॥

चौपाई :

*** ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना। मुनि दुर्लभ गुन जे जग नाना॥ आजु देउँ सब संसय नाहीं।
मागु जो तोहि भाव मन माहीं॥1॥

भावार्थ:-

ज्ञान, विवेक, वैराग्य, विज्ञान, (तत्त्वज्ञान) और वे अनेकों गुण जो जगत् में मुनियों के लिए भी

दुर्लभ हैं, ये सब मैं आज तुझे दूँगा, इसमें संदेह नहीं। जो तेरे मन भावे, सो माँग ले॥1॥

*** सुनि प्रभु बचन अधिक अनुरागेउँ। मन अनुमान करन तब लागेउँ॥ प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही॥2॥

भावार्थ:-

प्रभु के वचन सुनकर मैं बहुत ही प्रेम में भर गया। तब मन में अनुमान करने लगा कि प्रभु ने सब सुखों के देने की बात कही, यह तो सत्य है, पर अपनी भक्ति देने की बात नहीं कही॥2॥

*** भगति हीन गुन सब सुख ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे॥ भजन हीन सुख कवने काजा। अस बिचारि बोलेउँ खगराजा॥3॥

भावार्थ:-

भक्ति से रहित सब गुण और सब सुख वैसे ही (फीके) हैं जैसे नमक के बिना बहुत प्रकार के भोजन के पदार्थ। भजन से रहित सुख किस काम के? हे पक्षीराज! ऐसा विचार कर मैं बोला-॥3॥

*** जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू। मो पर करहु कृपा अरु नेहू॥ मन भावत बर मागउँ स्वामी। तुम्ह उदार उर अंतरजामी॥4॥

भावार्थ:-

हे प्रभो! यदि आप प्रसन्न होकर मुझे वर देते हैं और मुझ पर कृपा और स्नेह करते हैं तो हे स्वामी! मैं अपना मनभाया वर माँगता हूँ। आप उदार हैं और हृदय के भीतर की जानने वाले हैं॥4॥

दोहा :

***अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुरान जो गाव। जेहि खोजत जोगीस मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव॥84 क॥

भावार्थ:-

आपकी जिस अविरल (प्रगाढ़) एवं विशुद्ध (अनन्य निष्काम) भक्ति को श्रुति और पुराण गाते हैं, जिसे योगीश्वर मुनि खोजते हैं और प्रभु की कृपा से कोई विरला ही जिसे पाता है॥84 (क)॥

*** भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपा सिंधु सुखधाम। सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम॥84 ख॥

भावार्थ:-

हे भक्तों के (मन इच्छित फल देने वाले) कल्पवृक्ष! हे शरणागत के हितकारी! हे कृपासागर! हे सुखधान श्री रामजी! दया करके मुझे अपनी वही भक्ति दीजिए॥84 (ख)॥

चौपाई :

*** एवमस्तु कहि रघुकुलनायक। बोले बचन परम सुखदायक॥ सुनु बायस तैं सहज सयाना। काहे न मागसि अस बरदाना॥1॥

भावार्थ:-

'एवमस्तु' (ऐसा ही हो) कहकर रघुवंश के स्वामी परम सुख देने वाले वचन बोले हे काक! सुन, तू स्वभाव से ही बुद्धिमान् है। ऐसा वरदान कैसे न माँगता?॥1॥

*** सब सुख खानि भगति तैं मागी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड़भागी॥ जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं। जे जप जोग अनल तन दहहीं॥2॥

भावार्थ:-

तूने सब सुखों की खान भक्ति माँग ली, जगत् में तेरे समान बड़भागी कोई नहीं है। वे मुनि जो जप और योग की अग्नि से शरीर जलाते रहते हैं, करोड़ों यत्न करके भी जिसको (जिस भक्ति को) नहीं पाते॥2॥

*** रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। मागेहु भगति मोहि अति भाई॥ सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरें। सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरें॥3॥

भावार्थ:-

वही भक्ति तूने माँगी। तेरी चतुरता देखकर मैं रीझ गया। यह चतुरता मुझे बहुत ही अच्छी लगी। हे पक्षी! सुन, मेरी कृपा से अब समस्त शुभ गुण तेरे हृदय में बसेंगे॥3॥

*** भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा॥ जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा॥4॥

भावार्थ:-

भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, वैराग्य, योग, मेरी लीलाएँ और उनके रहस्य तथा विभाग- इन सबके भेद को तू मेरी कृपा से ही जान जाएगा। तुझे साधन का कष्ट नहीं होगा॥4॥

दोहा :

***माया संभव भ्रम सब अब न ब्यापिहहिं तोहि। जानेसु ब्रह्म अनादि अज अगुन गुनाकर मोहि॥85 क॥

भावार्थ:-

माया से उत्पन्न सब भ्रम अब तुझको नहीं व्यापेंगे। मुझे अनादि अजन्मा, अगुण (प्रकृति के गुणों से रहित) और (गुणातीत दिव्य) गुणों की खान ब्रह्म जानना॥85 (क)॥

*** मोहि भगत प्रिय संतत अस बिचारि सुनु काग। कायँ बचन मन मम पद करेसु अचल अनुराग॥85 ख॥

भावार्थ:-

हे काक! सुन, मुझे भक्त निरंतर प्रिय हैं, ऐसा विचार कर शरीर, वचन और मन से मेरे चरणों में अटल प्रेम करना॥85 (ख)॥

चौपाई :

*** अब सुनु परम बिमल मम बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानी॥ निज सिद्धांत सुनावउँ तोही। सुनु मन धरु सब तजि भजु मोही॥॥

भावार्थ:-

अब मेरी सत्य, सुगम, वेदादि के द्वारा वर्णित परम निर्मल वाणी सुन। मैं तुझको यह 'निज सिद्धांत' सुनाता हूँ। सुनकर मन में धारण कर और सब तजकर मेरा भजन कर॥

*** बमम माया संभव संसारा। जीव चराचर बिबिधि प्रकारा॥ सब मम प्रिय सब मम उपजाए।
सब ते अधिक मनुज मोहि भाए॥2॥

भावार्थ:-

यह सारा संसार मेरी माया से उत्पन्न है। (इसमें) अनेकों प्रकार के चराचर जीव हैं। वे सभी मुझे प्रिय हैं, क्योंकि सभी मेरे उत्पन्न किए हुए हैं। (किंतु) मनुष्य मुझको सबसे अधिक अच्छे लगते हैं॥2॥

*** तिन्ह महुँ द्विज द्विज महुँ श्रुतिधारी। तिन्ह महुँ निगम धरम अनुसारी॥ तिन्ह महुँ प्रिय
बिरक्त पुनि ग्यानी। ग्यानिहु ते अति प्रिय बिग्यानी॥B॥

भावार्थ:-

उन मनुष्यों में द्विज, द्विजों में भी वेदों को (कंठ में) धारण करने वाले, उनमें भी वेदोक्त धर्म पर चलने वाले, उनमें भी विरक्त (वैराग्यवान्) मुझे प्रिय हैं। वैराग्यवानों में फिर जानी और जानियों से भी अत्यंत प्रिय विज्ञानी हैं॥3॥

*** तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥ पुनि पुनि सत्य कहउँ
तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाहीं॥4॥

भावार्थ:-

विज्ञानियों से भी प्रिय मुझे अपना दास है, जिसे मेरी ही गति (आश्रय) है, कोई दूसरी आशा नहीं है। मैं तुझसे बार-बार सत्य ('निज सिद्धांत') कहता हूँ कि मुझे अपने सेवक के समान प्रिय कोई भी नहीं है॥4॥

*** भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥ भगतिवंत अति नीचउ
प्राणी। मोहि प्रानप्रिय असि मम बानी॥5॥

भावार्थ:-

भक्तिहीन ब्रह्मा ही क्यों न हो, वह मुझे सब जीवों के समान ही प्रिय है, परंतु भक्तिमान् अत्यंत नीच भी प्राणी मुझे प्राणों के समान प्रिय है, यह मेरी घोषणा है॥5॥

दोहा :

*** सुचि सुशील सेवक सुमति प्रिय कहु काहि न लाग। श्रुति पुरान कह नीति असि सावध्म
सुनु काग॥86॥

भावार्थ:-

पवित्र, सुशील और सुंदर बुद्धि वाला सेवक बता, किसको प्यारा नहीं लगता? वेद और पुराण ऐसी ही नीति कहते हैं। हे काक! सावधान होकर सुन॥86॥

चौपाई :

*** एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक् गुण सील अचारा॥ कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता।
कोउ धनवंत सूर कोउ दाता॥1॥

भावार्थ:-

एक पिता के बहुत से पुत्र पृथक्पृथक् गुण, स्वभाव और आचरण वाले होते हैं। कोई पंडित होता है, कोई तपस्वी, कोई जानी, कोई धनी, कोई शूरवीर, कोई दानी,॥1॥

*** कोउ सर्वग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई॥ कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा।
सपनेहुँ जान न दूसर धर्मा॥2॥

भावार्थ:-

कोई सर्वज्ञ और कोई धर्मपरायण होता है। पिता का प्रेम इन सभी पर समान होता है, परंतु इनमें से यदि कोई मन, वचन और कर्म से पिता का ही भक्त होता है, स्वप्न में भी दूसरा धर्म नहीं जानता,॥2॥

*** सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना॥ एहि बिधि जीव चराचर
जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते॥3॥

भावार्थ:-

वह पुत्र पिता को प्राणों के समान प्रिय होता है, यद्यपि (चाहे) वह सब प्रकार से अज्ञान (मूर्ख) ही हो। इस प्रकार तिर्यक् (पशु-पक्षी), देव, मनुष्य और असुरों समेत जितने भी चेतन और जड़ जीव हैं,॥3॥

***अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया॥ तिन्ह महुँ जो परिहरि मद
माया। भजै मोहि मन बच अरु काया॥4॥

भावार्थ:-

(उनसे भरा हुआ) यह संपूर्ण विश्व मेरा ही पैदा किया हुआ है। अतः सब पर मेरी बराबर दया है परंतु इनमें से जो मद और माया छोड़कर मन, वचन और शरीर से मुझको भजता है,॥4॥

दोहा :

*** पुरुष नपुंसक नारि वा जीव चराचर कोइ। सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय
सोइ॥87 क॥

भावार्थ:-

वह पुरुष हो, नपुंसक हो, स्त्री हो अथवा चर-अचर कोई भी जीव हो, कपट छोड़कर जो भी सर्वभाव से मुझे भजता है, वही मुझे परम प्रिय है॥87 (क)॥

सोरठा :

*** सत्य कहउँ खग तोहि सुचि सेवक मम प्रानप्रिय। अस बिचारि भजु मोहि परिहरि आस भरोस
सब॥87 ख॥

भावार्थ:-

हे पक्षी! मैं तुझसे सत्य कहता हूँ पवित्र (अनन्य एवं निष्काम) सेवक मुझे प्राणों के समान प्यारा है। ऐसा विचारकर सब आशा-भरोसा छोड़कर मुझी को भज॥87 (ख)॥

चौपाई :

*** कबहूँ काल न ब्यापिहि तोही। सुमिरेसु भजेसु निरंतर मोही॥ प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ।
तनु पुलकित मन अति हरषाऊँ॥१॥

भावार्थ:-

तुझे काल कभी नहीं व्यापेगा। निरंतर मेरा स्मरण और भजन करते रहना। प्रभु के वचनामृत सुनकर मैं तृप्त नहीं होता था। मेरा शरीर पुलकित था और मन में मैं अत्यंत ही हर्षित हो रहा था॥१॥

*** सो सुख जानइ मन अरु काना। नहिं रसना पहिं जाइ बखाना॥ प्रभु सोभा सुख जानहिं
नयना। कहि किम सकहिं तिन्हहि नहिं बयना॥२॥

भावार्थ:-

वह सुख मन और कान ही जानते हैं। जीभ से उसका बखान नहीं किया जा सकता। प्रभु की शोभा का वह सुख नेत्र ही जानते हैं। पर वे कह कैसे सकते हैं। उनके वाणी तो है नहीं॥२॥

*** बहु बिधि मोहि प्रबोधि सुख देई। लगे करन सिसु कौतुक तेई॥ सजल नयन कछु मुख करि
रूखा। चितई मातु लागी अति भूखा॥३॥

भावार्थ:-

मुझे बहुत प्रकार से भलीभाँति समझकर और सुख देकर प्रभु फिर वही बालकों के खेल करने लगे। नेत्रों में जल भरकर और मुख को कुछ रूखा (सा) बनाकर उन्होंने माता की ओर देखा- (और मुखाकृति तथा चितवन से माता को समझा दिया कि) बहुत भूख लगी है॥३॥

*** देखि मातु आतुर उठि धई। कहि मृदु बचन लिए उर लाई॥ गोद राखि कराव पय पाना।
रघुपति चरित ललित कर गाना॥४॥

भावार्थ:-

यह देखकर माता तुरंत उठ दौड़ीं और कोमल वचन कहकर उन्होंने श्री रामजी को छाती से लगा लिया। वे गोद में लेकर उन्हें दूध पिलाने लगीं और श्री रघुनाथजी (उन्हीं) की ललित लीलाएँ गाने लगीं॥४॥

सोरठा :

*** जेहि सुख लाग पुरारि असुभ बेष कृत सिव सुखद। अवधपुरी नर नारि तेहि सुख महुँ संतत
मगन॥८८ क॥

भावार्थ:-

जिस सुख के लिए (सबको) सुख देने वाले कल्याण रूप त्रिपुरारि शिवजी ने अशुभ वेष धारण

किया, उस सुख में अवधपुरी के नरनारी निरंतर निमग्न रहते हैं॥88 (क)॥

*** सोई सुख लवलेस जिन्ह बारक सपनेहुँ लहेउ। ते नहिं गनहिं खगेस ब्रह्मसुखहि सज्जन सुमति॥88 ख॥

भावार्थ:-

उस सुख का लवलेशमात्र जिन्होंने एक बार स्वप्न में भी प्राप्त कर लिया, हे पक्षीराज! वे सुंदर बुद्धि वाले सज्जन पुरुष उसके सामने ब्रह्मसुख को भी कुछ नहीं गिनते॥88 (ख)॥

चौपाई :

***में पुनि अवध रहेउँ कछु काला। देखेउँ बालबिनोद रसाला॥ राम प्रसाद भगति बर पायउँ। प्रभु पद बंदि निजाश्रम आयउँ॥1॥

भावार्थ:-

मैं और कुछ समय तक अवधपुरी में रहा और मैंने श्री रामजी की रसीली बाल लीलाएँ देखीं। श्री रामजी की कृपा से मैंने भक्ति का वरदान पाया। तदनन्तर प्रभु के चरणों की वंदना करके मैं अपने आश्रम पर लौट आया॥1॥

*** तब ते मोहि न ब्यापी माया। जब ते रघुनायक अपनाया॥ यह सब गुप्त चरित मैं गावा। हरि मायाँ जिमि मोहि नचावा॥2॥

भावार्थ:-

इस प्रकार जब से श्री रघुनाथजी ने मुझे अपनाया, तब से मुझे माया कभी नहीं व्यापी। श्री हरि की माया ने मुझे जैसे नचाया, वह सब गुप्त चरित्र मैंने कहा॥2॥

*** निज अनुभव अब कहउँ खगेसा। बिनु हरि भजन न जाहिं कलेसा॥ राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई॥3॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज गरुड़! अब मैं आपसे अपना निजी अनुभव कहता हूँ। (वह यह है कि) भगवान् के भजन बिना क्लेश दूर नहीं होते। हे पक्षीराज! सुनिए, श्री रामजी की कृपा बिना श्री रामजी की प्रभुता नहीं जानी जाती,॥3॥

*** जानें बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहिं प्रीती॥ प्रीति बिना नहिं भगति दिदाई। जिमि खगपति जल कै चिकनाई॥4॥

भावार्थ:-

प्रभुता जाने बिना उन पर विश्वास नहीं जमता, विश्वास के बिना प्रीति नहीं होती और प्रीति बिना भक्ति वैसे ही दृढ़ नहीं होती जैसे हे पक्षीराज! जल की चिकनाई ठहरती नहीं॥4॥

सोरठा :

*** बिनु गुर होइ कि ग्यान ग्यान कि होइ बिराग बिनु। गावहिं बेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु॥89 क॥

भावार्थ:-

गुरु के बिना कहीं ज्ञान हो सकता है? अथवा वैराग्य के बिना कहीं ज्ञान हो सकता है? इसी तरह वेद और पुराण कहते हैं कि श्री हरि की भक्ति के बिना क्या सुख मिल सकता है?॥89 (क)॥

*** कोउ बिश्राम कि पाव तात सहज संतोष बिनु। चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ॥89 ख॥

भावार्थ:-

हे तात! स्वाभाविक संतोष के बिना क्या कोई शांति पा सकता है? (चाहे) करोड़ों उपाय करके पच-पच मारिए, (फिर भी) क्या कभी जल के बिना नाव चल सकती है?॥89 (ख)॥

चौपाई :

*** बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥ राम भजन बिनु मिटहिं कि कामा। थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा॥॥

भावार्थ:-

संतोष के बिना कामना का नाश नहीं होता और कामनाओं के रहते स्वप्न में भी सुख नहीं हो सकता और श्री राम के भजन बिना कामनाएँ कहीं मिट सकती हैं? बिना धरती के भी कहीं पेड़ उग सकता है?॥1॥

***बिनु बिग्यान कि समता आवइ। कोउ अवकास कि नभ बिनु पावइ॥ श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावइ कोई॥2॥

भावार्थ:-

विज्ञान (तत्त्वज्ञान) के बिना क्या समभाव आ सकता है? आकाश के बिना क्या कोई अवकाश (पोल) पा सकता है? श्रद्धा के बिना धर्म (का आचरण) नहीं होता। क्या पृथ्वी तत्त्व के बिना कोई गंध पा सकता है?॥2॥

*** बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा॥ सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गोसाँई॥3॥

भावार्थ:-

तप के बिना क्या तेज फैल सकता है? जल-तत्त्व के बिना संसार में क्या रस हो सकता है? पंडितजनों की सेवा बिना क्या शील (सदाचार) प्राप्त हो सकता है? हे गोसाँई! जैसे बिना तेज (अग्नि-तत्त्व) के रूप नहीं मिलता॥3॥

*** निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। परस कि होइ बिहीन समीरा॥ कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनु हरि भजन न भव भय नासा॥4॥

भावार्थ:-

निज-सुख (आत्मानंद) के बिना क्या मन स्थिर हो सकता है? वायु-तत्त्व के बिना क्या स्पर्श हो सकता है? क्या विश्वास के बिना कोई भी सिद्धि हो सकती है? इसी प्रकार श्री हरि के भजन बिना

जन्म-मृत्यु के भय का नाश नहीं होता॥4॥

दोहा :

*** बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु। राम कृपा बिनु सपनेहुँ जीव न लह
बिश्रामु॥90 क॥

भावार्थ:-

बिना विश्वास के भक्ति नहीं होती, भक्ति के बिना श्री रामजी पिघलते (ढरते) नहीं और श्री
रामजी की कृपा के बिना जीव स्वप्न में भी शांति नहीं पाता॥90 (क)॥

सोरठा :

*** अस बिचारि मतिधीर तजि कुतर्क संसय सकल। भजहु राम रघुबीर करुनाकर सुंदर सुखद॥0
ख॥

भावार्थ:-

हे धीरबुद्धि! ऐसा विचारकर संपूर्ण कुतर्कों और संदेहों को छोड़कर करुणा की खान सुंदर और सुख
देने वाले श्री रघुवीर का भजन कीजिए॥90 (ख)॥ चौपाई

*** निज मति सरिस नाथ मैं गाई। प्रभु प्रताप महिमा खगराई॥ कहेउँ न कछु करि जुगुति
बिसेषी। यह सब मैं निज नयनन्हि देखी॥1॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज! हे नाथ! मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार प्रभु के प्रताप और महिमा का गान किया। मैंने
इसमें कोई बात युक्ति से बढ़ाकर नहीं कही है। यह सब अपनी आँखों देखी कही है॥1॥

*** महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनंत रघुनाथा॥ निज निज मति मुनि हरि गुन
गावहिं। निगम शेष सिव पार न पावहिं॥2॥

भावार्थ:-

श्री रघुनाथजी की महिमा, नाम, रूप और गुणों की कथा सभी अपार एवं अनंत हैं तथा श्री
रघुनाथजी स्वयं भी अनंत हैं। मुनिगण अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार श्री हरि के गुण गाते हैं।
वेद, शेष और शिवजी भी उनका पार नहीं पाते॥2॥

*** तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता॥ तिमि रघुपति महिमा
अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा॥3॥

भावार्थ:-

आप से लेकर मच्छरपर्यन्त सभी छोटे-बड़े जीव आकाश में उड़ते हैं, किंतु आकाश का अंत कोई
नहीं पाता। इसी प्रकार हे तात! श्री रघुनाथजी की महिमा भी अथाह है। क्या कभी कोई उसकी
थाह पा सकता है?॥3॥

*** रामु काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन॥ सक्र कोटि सत सरिस
बिलासा। नभ सत कोटि अमित अवकासा॥4॥

भावार्थ:-

श्री रामजी का अरबों कामदेवों के समान सुंदर शरीर है। वे अनंत कोटि दुर्गाओं के समान शत्रुनाशक हैं। अरबों इंद्रों के समान उनका विलास (ऐश्वर्य) है। अरबों आकाशों के समान उनमें अनंत अवकाश (स्थान) है॥4॥

दोहा :

*** मरुत कोटि सत बिपुल बल रबि सत कोटि प्रकास। ससि सत कोटि सुसीतल समन सकल भव त्रास॥91 क॥

भावार्थ:-

अरबों पवन के समान उनमें महान् बल है और अरबों सूर्यों के समान प्रकाश है। अरबों चंद्रमाओं के समान वे शीतल और संसार के समस्त भयों का नाश करने वाले हैं॥91 (क)॥

*** काल कोटि सत सरिस अति दुस्तर दुर्ग दुरंत। धूमकेतु सत कोटि सम दुराधरष भगवंत॥91 ख॥

भावार्थ:-

अरबों कालों के समान वे अत्यंत दुस्तर, दुर्गम और दुरंत हैं। वे भगवान् अरबों धूमकेतुओं (पुच्छल तारों) के समान अत्यंत प्रबल हैं॥91 (ख)॥

चौपाई :

*** प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला॥ तीरथ अमित कोटि सम पावन। नाम अखिल अघ पूग नसावन॥1॥

भावार्थ:-

अरबों पातालों के समान प्रभु अथाह हैं। अरबों यमराजों के समान भयानक हैं। अनंतकोटि तीर्थों के समान वे पवित्र करने वाले हैं। उनका नाम संपूर्ण पापसमूह का नाश करने वाला है॥1॥

*** हिमगिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा॥ कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना॥2॥

भावार्थ:-

श्री रघुवीर करोड़ों हिमालयों के समान अचल (स्थिर) हैं और अरबों समुद्रों के समान गहरे हैं। भगवान् अरबों कामधेनुओं के समान सब कामनाओं (इच्छित पदार्थों) के देने वाले हैं॥3॥

*** सारद कोटि अमित चतुराई। बिधि सत कोटि सृष्टि निपुनाई॥ बिष्णु कोटि सम पालन कर्ता। रुद्र कोटि सत सम संहर्ता॥3॥

भावार्थ:-

उनमें अनंतकोटि सरस्वतियों के समान चतुरता है। अरबों ब्रह्माओं के समान सृष्टि रचना की निपुणता है। वे करोड़ों विष्णुओं के समान पालन करने वाले और अरबों रुद्रों के समान संहार करने वाले हैं॥3॥

*** धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना॥ भार धरन सत कोटि अहीसा।
निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा॥४॥

भावार्थ:-

वे अरबों कुबेरों के समान धनवान् और करोड़ों मायाओं के समान सृष्टि के खजाने हैं। बोझ उठाने में वे अरबों शेषों के समान हैं। (अधिक क्या) जगदीश्वर प्रभु श्री रामजी (सभी बातों में) सीमारहित और उपमारहित हैं॥४॥

छंद :

*** निरुपम न उपमा आन राम समान रामु निगम कहै। जिमि कोटि सत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहै॥ एहि भाँति निज निज मति बिलास मुनीस हरिहि बखानहीं। प्रभु भाव गाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं॥

भावार्थ:-

श्री रामजी उपमारहित हैं, उनकी कोई दूसरी उपमा है ही नहीं। श्री राम के समान श्री राम ही हैं, ऐसा वेद कहते हैं। जैसे अरबों जुगनुओं के समान कहने से सूर्य। (प्रशंसा को नहीं वरन) अत्यंत लघुता को ही प्राप्त होता है (सूर्य की निंदा ही होती है)। इसी प्रकार अपनी-अपनी बुद्धि के विकास के अनुसार मुनीश्वर श्री हरि का वर्णन करते हैं, किंतु प्रभु भक्तों के भावमात्र को ग्रहण करने वाले और अत्यंत कपालु हैं। वे उस वर्णन को प्रेमसहित सुनकर सुख मानते हैं।

दोहा :

*** रामु अमित गुन सागर थाह कि पावइ कोइ। संतन्ह सन जस किछु सुनेउँ तुम्हहि सुनायउँ सोइ॥९२ क॥

भावार्थ:-

श्री रामजी अपार गुणों के समुद्र हैं, क्या उनकी कोई थाह पा सकता है? संतों से मैंने जैसा कुछ सुना था, वही आपको सुनाया॥९२ (क)॥

सोरठा :

*** भाव बस्य भगवान सुख निधान करुना भवन। तजि ममता मद मान भजिअ सदा सीता रवन॥९२ ख॥

भावार्थ:-

सुख के भंडार, करुणाधाम भगवान भाव (प्रेम) के वश हैं। (अतएव) ममता, मद और मान को छोड़कर सदा श्री जानकीनाथजी का ही भजन करना चाहिए॥९२ (ख)॥

चौपाई :

*** सुनि भुसुंडि के बचन सुहाए। हरषित खगपति पंख फुलाए॥ नयन नीर मन अति हरषाना। श्रीरघुपति प्रताप उर आना॥१॥

भावार्थ:-

भुशुण्डिजी के सुंदर वचन सुनकर पक्षीराज ने हर्षित होकर अपने पंख फुला लिए। उनके नेत्रों में (प्रेमानंद के आँसुओं का) जल आ गया और मन अत्यंत हर्षित हो गया। उन्होंने श्री रघुनाथजी का प्रताप हृदय में धारण किया॥1॥

*** पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि माना॥ पुनि पुनि काग चरन सिरु नावा। जानि राम सम प्रेम बढ़ावा॥2॥

भावार्थ:-

वे अपने पिछले मोह को समझकर (याद करके) पछिताने लगे कि मैंने अनादि ब्रह्म को मनुष्य करके माना। गरुड़जी ने बार-बार काकभुशुण्डिजी के चरणों पर सिर नवाया और उन्हें श्री रामजी के ही समान जानकर प्रेम बढ़ाया॥2॥

*** गुरु बिनु भव निध तरइ न कोई। जौं बिरंचि संकर सम होई॥ संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता॥3॥

भावार्थ:-

गुरु के बिना कोई भवसागर नहीं तर सकता, चाहे वह ब्रह्माजी और शंकरजी के समान ही क्यों न हो। (गरुड़जी ने कहा-) हे तात! मुझे संदेह रूपी सर्प ने डस लिया था और (साँप के डसने पर जैसे विष चढ़ने से लहरें आती हैं वैसे ही) बहुत सी कुतर्क रूपी दुःख देने वाली लहरें आ रही थीं॥3॥

*** तव सरूप गारुडि रघुनायक। मोहि जिआयउ जन सुखदायक॥ तव प्रसाद मम मोह नसाना। राम रहस्य अनूपम जाना॥4॥

भावार्थ:-

आपके स्वरूप रूपी गारुड़ी (साँप का विष उतारने वाले) के द्वारा भक्तों को सुख देने वाले श्री रघुनाथजी ने मुझे जिला लिया। आपकी कृपा से मेरा मोह नाश हो गया और मैंने श्री रामजी का अनुपम रहस्य जाना॥4॥

दोहा :

***ताहि प्रसंसि बिबिधि बिधि सीस नाइ कर जोरि। बचन बिनीत सप्रेम मृदु बोलेउ गरुड बहोरि॥93 क॥

भावार्थ:-

उनकी (भुशुण्डिजी की) बहुत प्रकार से प्रशंसा करके, सिर नवाकर और हाथ जोड़कर फिर गरुड़जी प्रेमपूर्वक विनम्र और कोमल वचन बोले-॥93 (क)॥

*** प्रभु अपने अबिबेक ते बूझउँ स्वामी तोहि। कृपासिंधु सादर कहहु जानि दास निज मोहि॥3 ख॥

भावार्थ:-

हे प्रभो! हे स्वामी! मैं अपने अविवेक के कारण आपसे पूछता हूँ। हे कृपा के समुद्र मुझे अपना

'निज दास' जानकर आदरपूर्वक (विचारपूर्वक) मेरे प्रश्न का उत्तर कहिए॥93 (ख)॥

चौपाई :

*** तुम्ह सबैग्य तग्य तम पारा। सुमति सुशील सरल आचारा॥ ग्यान बिरति बिग्यान निवासा।
रघुनायक के तुम्ह प्रिय दासा॥॥

भावार्थ:-

आप सब कुछ जानने वाले हैं, तत्त्व के ज्ञाता हैं, अंधकार (माया) से परे, उत्तम बुद्धि से युक्त, सुशील, सरल आचरण वाले, ज्ञान, वैराग्य और विज्ञान के धाम और श्री रघुनाथजी के प्रिय दास हैं॥१॥

*** कारन कवन देह यह पाई। तात सकल मोहि कहहु बुझाई॥ राम चरित सुर सुंदर स्वामी।
पायहु कहाँ कहहु नभगामी॥॥

भावार्थ:-

आपने यह काक शरीर किस कारण से पाया? हे तात! सब समझाकर मुझसे कहिए। हे स्वामी! हे आकाशगामी! यह सुंदर रामचरित मानस आपने कहाँ पाया, सो कहिए॥२॥

*** नाथ सुना मैं अस सिव पाहीं। महा प्रलयहुँ नास तव नाहीं॥ मुधा बचन नहिं ईस्वर कहई।
सोउ मोरें मन संसय अहई॥३॥

भावार्थ:-

हे नाथ! मैंने शिवजी से ऐसा सुना है कि महाप्रलय में भी आपका नाश नहीं होता और ईश्वर (शिवजी) कभी मिथ्या वचन कहते नहीं। वह भी मेरे मन में संदेह है॥३॥

*** अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जगु काल कलेवा॥ अंड कटाह अमित लय कारी।
कालु सदा दुरतिक्रम भारी॥४॥

भावार्थ:-

(क्योंकि) हे नाथ! नाग, मनुष्य, देवता आदि चर-अचर जीव तथा यह सारा जगत् काल का कलेवा है। असंख्य ब्रह्मांडों का नाश करने वाला काल सदा बड़ा ही अनिवार्य है॥४॥

सोरठा :

*** तुम्हहि न ब्यापत काल अति कराल कारन कवन। मोहि सो कहहु कृपाल ग्यान प्रभाव कि
जोग बल॥९४ क॥

भावार्थ:-

(ऐसा वह) अत्यंत भयंकर काल आपको नहीं व्यापता (आप पर प्रभाव नहीं दिखलाता) इसका क्या कारण है? हे कृपालु मुझे कहिए यह ज्ञान का प्रभाव है या योग का बल है?॥९४ (क)॥

दोहा :

*** प्रभु तव आश्रम आएँ मोर मोह भ्रम भाग। कारन कवन सो नाथ सब कहहु सहित
अनुराग॥९४ ख॥

भावार्थ:-

हे प्रभो! आपके आश्रम में आते ही मेरा मोह और भ्रम भाग गया। इसका क्या कारण है? हे नाथ! यह सब प्रेम सहित कहिए॥94 (ख)॥

चौपाई :

*** गरुड़ गिरा सुनि हरषेउ कागा। बोलेउ उमा परम अनुरागा॥ धन्य धन्य तव मति उरगारी।
प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी॥1॥

भावार्थ:-

हे उमा! गरुड़जी की वाणी सुनकर काकभुशुण्डिजी हर्षित हुए और परम प्रेम से बोले हे सर्पों के शत्रु! आपकी बुद्धि धन्य है धन्य है! आपके प्रश्न मुझे बहुत ही प्यारे लगे॥

*** सुनि तव प्रश्न सप्रेम सुहाई। बहुत जनम कै सुधि मोहि आई॥ सब निज कथा कहउंमें
गाई। तात सुनहु सादर मन लाई॥2॥

भावार्थ:-

आपके प्रेमयुक्त सुंदर प्रश्न सुनकर मुझे अपने बहुत जन्मों की याद आ गई। मैं अपनी सब कथा विस्तार से कहता हूँ। हे तात! आदर सहित मन लगाकर सुनिए॥2॥

*** जप तप मख सम दम ब्रत दाना। बिरति बिबेक जोग बिग्याना॥ सब कर फल रघुपति पद
प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावइ छेमा॥3॥

भावार्थ:-

अनेक जप, तप, यज्ञ, शम (मन को रोकना), दम (इंद्रियों को रोकना), व्रत, दान, वैराग्य, विवेक, योग, विज्ञान आदि सबका फल श्री रघुनाथजी के चरणों में प्रेम होना है। इसके बिना कोई कल्याण नहीं पा सकता॥3॥

*** एहिं तन राम भगति में पाई। ताते मोहि ममता अधिकाई॥ जेहि तें कछु निज स्वारथ होई।
तेहि पर ममता कर सब कोई॥4॥

भावार्थ:-

मैंने इसी शरीर से श्री रामजी की भक्ति प्राप्त की है। इसी से इस पर मेरी ममता अधिक है। जिससे अपना कुछ स्वार्थ होता है, उस पर सभी कोई प्रेम करते हैं॥4॥

सोरठा :

*** पन्नगारि असि नीति श्रुति संमत सज्जन कहहिं। अति नीचहु सन प्रीति करिअ जानि निज
परम हित॥95 क॥

भावार्थ:-

हे गरुड़जी! वेदों में मानी हुई ऐसी नीति है और सज्जन भी कहते हैं कि अपना परम हित जानकर अत्यंत नीच से भी प्रेम करना चाहिए॥95 (क)॥

*** पाट कीट तें होइ तेहि तें पाटंबर रुचिर। कृमि पालइ सबु कोइ परम अपावन प्रान सम॥95

ख॥

भावार्थ:-

रेशम कीड़े से होता है, उससे सुंदर रेशमी वस्त्र बनते हैं। इसी से उस परम अपवित्र कीड़े को भी सब कोई प्राणों के समान पालते हैं॥95 (ख)॥

चौपाई :

*** स्वारथ साँच जीव कहूँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा॥ सोड़ पावन सोड़ सुभग सरीरा।
जो तनु पाइ भजिअ रघुबीरा॥॥

भावार्थ:-

जीव के लिए सच्चा स्वार्थ यही है कि मन, वचन और कर्म से श्री रामजी के चरणों में प्रेम हो। वही शरीर पवित्र और सुंदर है जिस शरीर को पाकर श्री रघुवीर का भजन किया जाए॥॥

*** राम बिमुख लहि बिधि सम देही। कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही॥ राम भगति एहिं तन उर
जामी। ताते मोहि परम प्रिय स्वामी॥2॥

भावार्थ:-

जो श्री रामजी के विमुख है वह यदि ब्रह्माजी के समान शरीर पा जाए तो भी कवि और पंडित उसकी प्रशंसा नहीं करते। इसी शरीर से मेरे हृदय में रामभक्ति उत्पन्न हुई। इसी से हे स्वामी यह मुझे परम प्रिय है॥2॥

*** तजउँ न तन निज इच्छा मरना। तन बिनु बेद भजन नहिं बरना॥ प्रथम मोहँ मोहि बहुत
बिगोवा। राम बिमुख सुख कबहुँ न सोवा॥3॥

भावार्थ:-

मेरा मरण अपनी इच्छा पर है, परंतु फिर भी मैं यह शरीर नहीं छोड़ता, क्योंकि वेदों ने वर्णन किया है कि शरीर के बिना भजन नहीं होता। पहले मोह ने मेरी बड़ी दुर्दशा की। श्री रामजी के विमुख होकर मैं कभी सुख से नहीं सोया॥3॥

*** नाना जनम कर्म पुनि नाना। किए जोग जप तप मख दाना॥ कवन जोनि जनमेउँ जहँ
नाहीं। मैं खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं॥4॥

भावार्थ:-

अनेकों जन्मों में मैंने अनेकों प्रकार के योग, जप, तप, यज्ञ और दान आदि कर्म किए। हे गरुड़जी! जगत् में ऐसी कौन योनि है, जिसमें मैंने (बार-बार) घूम-फिरकर जन्म न लिया हो॥4॥

*** देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भयउँ अबहिं की नाईं॥ सुधि मोहि नाथ जन्म बहु
केरी। सिव प्रसाद मति मोहँ न घेरी॥5॥

भावार्थ:-

हे गुसाईं! मैंने सब कर्म करके देख लिए, पर अब (इस जन्म) की तरह मैं कभी सुखी नहीं हुआ। हे नाथ! मुझे बहुत से जन्मों की याद है (क्योंकि) श्री शिवजी की कृपा से मेरी बुद्धि को मोह ने

नहीं घेरा॥5॥

दोहा :

*** प्रथम जन्म के चरित अब कहउँ सुनहु बिहगेस। सुनि प्रभु पद रति उपजइ जातें मिटहिं कलेस॥96 क॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज! सुनिए, अब मैं अपने प्रथम जन्म के चरित्र कहता हूँ, जिन्हें सुनकर प्रभु के चरणों में प्रीति उत्पन्न होती है, जिससे सब क्लेश मिट जाते हैं॥96 (क)॥

*** पूरुब कल्प एक प्रभु जुग कलिजुग मल मूल। नर अरु नारि अधर्म रत सकल निगम प्रतिकूल॥96 ख॥

भावार्थ:-

हे प्रभो! पूर्व के एक कल्प में पापों का मूल युग कलियुग था जिसमें पुरुष और स्त्री सभी अधर्मपारायण और वेद के विरोधी थे॥96 (ख)॥

चौपाई :

*** तेहिं कलिजुग कोसलपुर जाई। जन्मत भयउँ सूद्र तनु पाई॥ सिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निंदक अभिमानी॥1॥

भावार्थ:-

उस कलियुग में मैं अयोध्यापुरी में जाकर शूद्र का शरीर पाकर जन्मा। मैं मन, वचन और कर्म से शिवजी का सेवक और दूसरे देवताओं की निंदा करने वाला अभिमानी था॥1॥

*** धन मद मत्त परम बाचाला। उग्रबुद्धि उर दंभ बिसाला॥ जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी॥2॥

भावार्थ:-

मैं धन के मद से मतवाला, बहुत ही बकवादी और उग्रबुद्धि वाला था मेरे हृदय में बड़ा भारी दंभ था। यद्यपि मैं श्री रघुनाथजी की राजधानी में रहता था, तथापि मैंने उस समय उसकी महिमा कुछ भी नहीं जानी॥2॥

*** अब जाना मैं अवध प्रभावा। निगमागम पुरान अस गावा॥ कवनेहुँ जन्म अवध बस जोई। राम परायन सो परि होई॥3॥

भावार्थ:-

अब मैंने अवध का प्रभाव जाना। वेद, शास्त्र और पुराणों ने ऐसा गाया है कि किसी भी जन्म में जो कोई भी अयोध्या में बस जाता है, वह अवश्य ही श्री रामजी के परायण हो जाएगा॥3॥

*** अवध प्रभाव जान तब प्राणी। जब उर बसहिं रामु धनुपानी॥ सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी॥4॥

भावार्थ:-

अवध का प्रभाव जीव तभी जानता है, जब हाथ में धनुष धारण करने वाले श्री रामजी उसके हृदय में निवास करते हैं। हे गरुड़जी! वह कलिकाल बड़ा कठिन था। उसमें सभी नर-नारी पापपरायण (पापों में लिप्त) थे॥4॥

दोहा :

*** कलिमल ग्रसे धर्म सब लुप्त भए सदग्रंथ। दंभिन्ह निज मति कल्पि करि प्रगट किए बहु पंथ॥97 क॥

भावार्थ:-

कलियुग के पापों ने सब धर्मों को ग्रस लिया, सदग्रंथ लुप्त हो गए, दम्भियों ने अपनी बुद्धि से कल्पना कर-करके बहुत से पंथ प्रकट कर दिए॥97 (क)॥

*** भए लोग सब मोहबस लोभ ग्रसे सुभ कर्म। सुनु हरिजान ग्यान निधि कहउँ कछुक कलिधर्म॥97 ख॥

भावार्थ:-

सभी लोग मोह के वश हो गए, शुभ कर्मों को लोभ ने हड़प लिया। हे ज्ञान के भंडार! हे श्री हरि के वाहन! सुनिए, अब मैं कलि के कुछ धर्म कहता हूँ॥97 (ख)॥

चौपाई :

*** बरन धर्म नहिं आश्रम चारी। श्रुति बिरोध रत सब नर नारी। द्विज श्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहिं मान निगम अनुसासन॥1॥

भावार्थ:-

कलियुग में न वर्णधर्म रहता है, न चारों आश्रम रहते हैं। सब पुरुष-स्त्री वेद के विरोध में लगे रहते हैं। ब्राह्मण वेदों के बेचने वाले और राजा प्रजा को खा डालने वाले होते हैं। वेद की आज्ञा कोई नहीं मानता॥1॥

*** मारग सोइ जा कहूँ जोइ भावा। पंडित सोइ जो गाल बजावा॥ मिथ्यारंभ दंभ रत जोई। ता कहूँ संत कहइ सब कोई॥2॥

भावार्थ:-

जिसको जो अच्छा लग जाए, वही मार्ग है। जो डींग मारता है, वही पंडित है। जो मिथ्या आरंभ करता (आडंबर रचता) है और जो दंभ में रत है, उसी को सब कोई संत कहते हैं॥2॥

*** सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी॥ जो कह झूठ मसखरी जाना।

कलियुग सोइ गुनवंत बखाना॥3॥

भावार्थ:-

जो (जिस किसी प्रकार से) दूसरे का धन हरण कर ले, वही बुद्धिमान है। जो दंभ करता है, वही बड़ा आचारी है। जो झूठ बोलता है और हँसी-दिल्लगी करना जानता है, कलियुग में वही गुणवान कहा जाता है॥3॥

*** निराचार जो श्रुति पथ त्यागी। कलिजुग सोइ ग्यानी सो बिरागी॥ जाके नख अरु जटा बिसाला। सोइ तापस प्रसिद्ध कलिकाला॥4॥

भावार्थ:-

जो आचारहीन है और वेदमार्ग को छोड़े हुए है कलियुग में वही ज्ञानी और वही वैराग्यवान् है। जिसके बड़े-बड़े नख और लंबी-लंबी जटाएँ हैं, वही कलियुग में प्रसिद्ध तपस्वी है॥4॥

दोहा :

*** असुभ बेष भूषण धरें भच्छाभच्छ जे खाहिं। तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर पूज्य ते कलिजुग माहिं॥98 क॥

भावार्थ:-

जो अमंगल वेष और अमंगल भूषण धारण करते हैं और भक्ष्य-भक्ष्य (खाने योग्य और न खाने योग्य) सब कुछ खा लेते हैं वे ही योगी हैं, वे ही सिद्ध हैं और वे ही मनुष्य कलियुग में पूज्य हैं॥98 (क)॥

सोरठा :

*** जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ। मन क्रम बचन लबार तेइ बकता कलिकाल महुँ॥98 ख॥

भावार्थ:-

जिनके आचरण दूसरों का अपकार (अहित) करने वाले हैं, उन्हीं का बड़ा गौरव होता है और वे ही सम्मान के योग्य होते हैं। जो मन, वचन और कर्म से लबार (झूठ बकने वाले) हैं, वे ही कलियुग में वक्ता माने जाते हैं॥98 (ख)॥

चौपाई :

*** नारि बिबस नर सकल गोसाईं। नाचहिं नट मर्कट की नाईं॥ सूद्र द्विजन्ह उपदेसहिं ग्याना। मेल जनेऊ लेहिं कुदाना॥1॥

भावार्थ:-

हे गोसाईं! सभी मनुष्य स्त्रियों के विशेष वश में हैं और बाजीगर के बंदर की तरह (उनके नचाए) नाचते हैं। ब्राह्मणों को शूद्र जानोपदेश करते हैं और गले में जनेऊ डालकर कुत्सित दान लेते हैं॥1॥

***सब नर काम लोभ रत क्रोधी। देव बिप्र श्रुति संत बिरोधी॥ गुन मंदिर सुंदर पति त्यागी।

भजहिं नारि पर पुरुष अभागी॥2॥

भावार्थ:-

सभी पुरुष काम और लोभ में तत्पर और क्रोधी होते हैं। देवता, ब्राह्मण, वेद और संतों के विरोधी होते हैं। अभागिनी स्त्रियाँ गुणों के धाम सुंदर पति को छोड़कर पर पुरुष का सेवन करती हैं॥2॥

*** सौभागिनीं बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नबीना॥ गुर सिष बधिर अंध का लेखा। एक

न सुनइ एक नहिं देखा॥3॥

भावार्थ:-

सुहागिनी स्त्रियाँ तो आभूषणों से रहित होती हैं, पर विधवाओं के नित्य नए श्रृंगार होते हैं। शिष्य और गुरु में बहरे और अंधे का सा हिसाब होता है। एक (शिष्य) गुरु के उपदेश को सुनता नहीं, एक (गुरु) देखता नहीं (उसे ज्ञानदृष्टि) प्राप्त नहीं है)॥3॥

*** हरइ सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महुँ परई॥ मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरे सोइ धर्म सिखावहिं॥4॥

भावार्थ:-

जो गुरु शिष्य का धन हरण करता है, पर शोक नहीं हरण करता, वह घोर नरक में पड़ता है। माता-पिता बालकों को बुलाकर वही धर्म सिखलाते हैं, जिससे पेट भरे॥4॥

दोहा :

*** ब्रह्म ग्यान बिनु नारि नर कहहिं न दूसरि बात। कौड़ी लागि लोभ बस करहिं बिप्र गुर घात॥99 क॥

भावार्थ:-

स्त्री-पुरुष ब्रह्मज्ञान के सिवा दूसरी बात नहीं करते, पर वे लोभवश कौड़ियों (बहुत थोड़े लाभ) के लिए ब्राह्मण और गुरु की हत्या कर डालते हैं॥99 (क)॥

*** बादहिं सूद्र द्विजन्ह सन हम तुम्ह ते कछु घाटि। जानइ ब्रह्म सो बिप्रबर आँखि देखावहिं डाटि॥99 ख॥

भावार्थ:-

शूद्र ब्राह्मणों से विवाद करते हैं (और कहते हैं) कि हम क्या तुमसे कुछ कम हैं? जो ब्रह्म को जानता है वही श्रेष्ठ ब्राह्मण है। (ऐसा कहकर) वे उन्हें डाँटकर आँखें दिखलाते हैं॥99 (ख)॥

चौपाई :

*** पर त्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने॥ तेइ अभेदवादी ग्यानी नर। देखा में चरित्र कलिजुग कर॥1॥

भावार्थ:-

जो पराई स्त्री में आसक्त, कपट करने में चतुर और मोह, द्रोह और ममता में लिपटे हुए हैं वे ही मनुष्य अभेदवादी (ब्रह्म और जीव को एक बताने वाले) जानी हैं। मैंने उस कलियुग का यह चरित्र देखा॥1॥

*** आपु गए अरु तिन्हहू घालहिं। जे कहुँ सत मारगप्रतिपालहिं॥ कल्प कल्प भरि एक एक नरका। परहिं जे दूषहिं श्रुति करि तरका॥2॥

भावार्थ:-

वे स्वयं तो नष्ट हुए ही रहते हैं, जो कहीं सन्मार्ग का प्रतिपालन करते हैं, उनको भी वे नष्ट कर

देते हैं। जो तर्क करके वेद की निंदा करते हैं, वे लोग कल्प-कल्पभर एक-एक नरक में पड़े रहते हैं॥2

*** जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा। पनारि मुई गृह संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होहिं संन्यासी॥3॥

भावार्थ:-

तेली, कुम्हार, चाण्डाल, भील, कोल और कलवार आदि जो वर्ण में नीचे हैं, स्त्री के मरने पर अथवा घर की संपत्ति नष्ट हो जाने पर सिर मुँड़ाकर संन्यासी हो जाते हैं॥3॥

*** ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं॥ बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषली स्वामी॥4॥

भावार्थ:-

वे अपने को ब्राह्मणों से पुजवाते हैं और अपने ही हाथों दोनों लोक नष्ट करते हैं। ब्राह्मण अपढ़, लोभी, कामी, आचारहीन, मूर्ख और नीची जाति की व्यभिचारिणी स्त्रियों के स्वामी होते हैं॥4॥

*** सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना॥ सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा॥5॥

भावार्थ:-

शूद्र नाना प्रकार के जप, तप और व्रत करते हैं तथा ऊँचे आसन (व्यास गद्दी) पर बैठकर पुराण कहते हैं। सब मनुष्य मनमाना आचरण करते हैं। अपार अनीति का वर्णन नहीं किया जा सकता॥5॥

दोहा :

*** भए बरन संकर कलि भिन्नसेतु सब लोग। करहिं पाप पावहिं दुख भय रुज सोक बियोग॥100 क॥

भावार्थ:-

कलियुग में सब लोग वर्णसंकर और मर्यादा से च्युत हो गए। वे पाप करते हैं और (उनके फलस्वरूप) दुःख, भय, रोग, शोक और (प्रिय वस्तु का) वियोग पाते हैं॥100 (क)॥

*** श्रुति संमत हरि भक्ति पथ संजुत बिरति बिबेक। तेहिं न चलहिं नर मोह बस कल्पहिं पंथ अनेक॥100 ख॥

भावार्थ:-

वेद सम्मत तथा वैराग्य और ज्ञान से युक्त जो हरिभक्ति का मार्ग है, मोहवश मनुष्य उस पर नहीं चलते और अनेकों नए-नए पंथों की कल्पना करते हैं॥100 (ख)॥

छंद :

*** बहु दाम सँवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्हि न रहि बिरती॥ तपसी धनवंत दरिद्र गृही।

कलि कौतुक तात न जात कही॥1॥

भावार्थ:-

संन्यासी बहुत धन लगाकर घर सजाते हैं। उनमें वैराग्य नहीं रहा, उसे विषयों ने हर लिया। तपस्वी धनवान हो गए और गृहस्थ दरिद्र। हे तात! कलियुग की लीला कुछ कही नहीं जाती॥1॥

*** कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती॥ सुत मानहिं मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नहीं जब लौं॥2॥

भावार्थ:-

कुलवती और सती स्त्री को पुरुष घर से निकाल देते हैं और अच्छी चाल को छोड़कर घर में दासी को ला रखते हैं। पुत्र अपने माता-पिता को तभी तक मानते हैं, जब तक स्त्री का मुँह नहीं दिखाई पड़ता॥2॥

***ससुरारि पिआरि लगी जब तैं। रिपुरुप कुटुंब भए तब तैं॥ नृप पाप परायन धर्म नहीं। करि दंड बिडंब प्रजा नितहीं॥3॥

भावार्थ:-

जब से ससुराल प्यारी लगने लगी, तब से कुटुम्बी शत्रु रूप हो गए। राजा लोग पाप परायण हो गए, उनमें धर्म नहीं रहा। वे प्रजा को नित्य ही (बिना अपराध) दंड देकर उसकी विडंबना (दुर्दशा) किया करते हैं॥3॥

*** धनवंत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उधार तपी॥ नहिं मान पुरान न बेदहि जो। हरि सेवक संत सही कलि सो॥4॥

भावार्थ:-

धनी लोग मलिन (नीच जाति के) होने पर भी कुलीन माने जाते हैं। द्विज का चिह्न जनेऊ मात्र रह गया और नंगे बदन रहना तपस्वी का। जो वेदों और पुराणों को नहीं मानते, कलियुग में वे ही हरिभक्त और सच्चे संत कहलाते हैं॥4॥

*** कबि बूंद उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी॥ कलि बारहिं बार दुकाल परै। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरै॥5॥

भावार्थ:-

कवियों के तो झुंड हो गए, पर दुनिया में उदार (कवियों का आश्रयदाता) सुनाई नहीं पड़ता। गुण में दोष लगाने वाले बहुत हैं पर गुणी कोई भी नहीं। कलियुग में बार-बार अकाल पड़ते हैं। अन्न के बिना सब लोग दुःखी होकर मरते हैं॥5॥

दोहा :

*** सुनु खगेस कलि कपट हठ दंभ द्वेष पाषंड। मान मोह मारादि मद ब्यापि रहे ब्रह्मंड॥101

क॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज गरुडजी! सुनिए कलियुग में कपट हठ (दुराग्रह), दम्भ, द्वेष, पाखंड, मान, मोह और काम आदि (अर्थात् काम, क्रोध और लोभ) और मद ब्रह्माण्डभर में व्याप्त हो गए (छा गए)॥101 (क)॥

*** तामस धर्म करिहिं नर जप तप व्रत मख दान। देव न बरषहिं धरनी बए न जामहिं धान॥101 ख॥

भावार्थ:-

मनुष्य जप, तप, यज्ञ, व्रत और दान आदि धर्म तामसी भाव से करने लगे। देवता (इंद्र) पृथ्वी पर जल नहीं बरसाते और बोया हुआ अन्न उगता नहीं॥101 (ख)॥

छंद :

*** अबला कच भूषण भूरि छुधा। धनहीन दुखी ममता बहुधा॥ सुख चाहहिं मू न धर्म रता। मति थोरि कठोरि न कोमलता॥1॥

भावार्थ:-

स्त्रियों के बाल ही भूषण हैं (उनके शरीर पर कोई आभूषण नहीं रह गया) और उनको भूख बहुत लगती है (अर्थात् वे सदा अतृप्त ही रहती हैं)। वे धनहीन और बहुत प्रकार की ममता होने के कारण दुःखी रहती हैं। वे मूर्ख सुख चाहती हैं, पर धर्म में उनका प्रेम नहीं है। बुद्धि थोड़ी है और कठोर है, उनमें कोमलता नहीं है॥1॥

*** नर पीड़ित रोग न भोग कहीं। अभिमान बिरोध अकारनहीं॥ लघु जीवन संबदु पंच दसा। कलपांत न नास गुमानु असा॥2॥

भावार्थ:-

मनुष्य रोगों से पीड़ित हैं, भोग (सुख) कहीं नहीं है। बिना ही कारण अभिमान और विरोध करते हैं। दस-पाँच वर्ष का थोड़ा सा जीवन है, परंतु घमंड ऐसा है मानो कल्पांत (प्रलय) होने पर भी उनका नाश नहीं होगा॥2॥

*** कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहिं मानत क्वौ अनुजा तनुजा॥ नहिं तोष बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भए मगता॥3॥

भावार्थ:-

कलिकाल ने मनुष्य को बेहाल (अस्त-व्यस्त) कर डाला। कोई बहिन-बेटी का भी विचार नहीं करता। (लोगों में) न संतोष है, न विवेक है और न शीतलता है। जाति, कुजाति सभी लोग भीख माँगने वाले हो गए॥3॥

*** इरिषा परुषाच्छर लोलुपता। भरि पूरि रही समता बिगता॥ सब लोग बियोग बिसोक हए। बरनाश्रम धर्म अचार गए॥4॥

भावार्थ:-

ईर्ष्या (डाह), कड़वे वचन और लालच भरपूर हो रहे हैं, समता चली गई। सब लोग वियोग और

विशेष शोक से मरे पड़े हैं। वर्णाश्रम धर्म के आचरण नष्ट हो गए॥4॥

*** दम दान दया नहीं जानपनी। जड़ता परबंचनताति घनी॥ तनु पोषक नारि नरा सगरे।
परनिंदक जे जग मो बगरे॥5॥

भावार्थ:-

इंद्रियों का दमन, दान, दया और समझदारी किसी में नहीं रही। मूर्खता और दूसरों को ठगना, यह बहुत अधिक बढ़ गया। स्त्री-पुरुष सभी शरीर के ही पालन-पोषण में लगे रहते हैं। जो पराई निंदा करने वाले हैं, जगत् में वे ही फैले हैं॥5॥

दोहा :

*** सुनु ब्यालारि काल कलि मल अवगुन आगार। गुनउ बहुत कलिजुग कर बिनु प्रयास
निस्तार॥102 क॥

भावार्थ:-

हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी! सुनिए, कलिकाल पाप और अवगुणों का घर है, किंतु कलियुग में एक गुण भी बढ़ा है कि उसमें बिना ही परिश्रम भवबंधन से छुटकारा मिल जाता है॥102 (क)॥

*** कृतजुग त्रेताँ द्वापर पूजा मख अरु जोग। जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं
लोग॥102 ख॥

भावार्थ:-

सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में जो गति पूजा, यज्ञ और योग से प्राप्त होती है, वही गति कलियुग में लोग केवल भगवान् के नाम से पा जाते हैं॥102 (ख)॥

चौपाई :

*** कृतजुग सब जोगी बिग्यानी। करि हरि ध्यान तरहिं भव प्रानी॥ त्रेताँ बिबिध जग्य नर
करहीं। प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरहीं॥1॥

भावार्थ:-

सत्ययुग में सब योगी और विज्ञानी होते हैं। हरि का ध्यान करके सब प्राणी भवसागर से तर जाते हैं। त्रेता में मनुष्य अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं और सब कर्मों को प्रभु को समर्पण करके भवसागर से पार हो जाते हैं॥1॥

*** द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा॥ कलिजुग केवल हरि गुन
गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा॥2॥

भावार्थ:-

द्वापर में श्री रघुनाथजी के चरणों की पूजा करके मनुष्य संसार से तर जाते हैं, दूसरा कोई उपाय नहीं है और कलियुग में तो केवल श्री हरि की गुणगाथाओं का गान करने से ही मनुष्य भवसागर की थाह पा जाते हैं॥2॥

*** कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना॥ सब भरोस तजि जो भज

रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि॥3॥

भावार्थ:-

कलियुग में न तो योग और यज्ञ है और न ज्ञान ही है। श्री रामजी का गुणगान ही एकमात्र आधार है। अतएव सारे भरोसे त्यागकर जो श्री रामजी को भजता है और प्रेमसहित उनके गुणसमूहों को गाता है॥3॥

*** सोइ भव तर कछु संसय नाही। नाम प्रताप प्रगट कलि माहीं॥ कलि कर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होहिं नहिं पापा॥4॥

भावार्थ:-

वही भवसागर से तर जाता है, इसमें कुछ भी संदेह नहीं। नाम का प्रताप कलियुग में प्रत्यक्ष है। कलियुग का एक पवित्र प्रताप (महिमा) है कि मानसिक पुण्य तो होते हैं, पर (मानसिक) पाप नहीं होते॥4॥

दोहा :

*** कलियुग सम जुग आन नहिं जाँ नर कर बिस्वास। गाइ राम गुन गन बिमल भव तर बिनहिं प्रयास॥103 क॥

भावार्थ:-

यदि मनुष्य विश्वास करे, तो कलियुग के समान दूसरा युग नहीं है, (क्योंकि) इस युग में श्री रामजी के निर्मल गुणसमूहों को गा-गाकर मनुष्य बिना ही परिश्रम संसार (रूपी समुद्र) से तर जाता है॥103 (क)॥

*** प्रगट चारि पद धर्म के कलि महुँ एक प्रधान। जेन केन बिधि दीन्हें दान करइ कल्याण॥103 ख॥

भावार्थ:-

धर्म के चार चरण (सत्य, दया, तप और दान) प्रसिद्ध हैं, जिनमें से कलि में एक (दान रूपी) चरण ही प्रधान है। जिस किसी प्रकार से भी दिए जाने पर दान कल्याण ही करता है॥103 (ख)॥

चौपाई :

*** नित जुग धर्म होहिं सब केरे। हृदयँ राम माया के प्रेरे॥ सुद्ध सत्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना॥1॥

भावार्थ:-

श्री रामजी की माया से प्रेरित होकर सबके हृदयों में सभी युगों के धर्म नित्य होते रहते हैं। शुद्ध सत्त्वगुण, समता, विज्ञान और मन का प्रसन्न होना, इसे सत्ययुग का प्रभाव जानें॥1॥

*** सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा॥ बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धर्म हरष भय मानस॥2॥

भावार्थ:-

सत्त्वगुण अधिक हो, कुछ रजोगुण हो, कर्मों में प्रीति हो, सब प्रकार से सुख हो, यह त्रेता का धर्म है। रजोगुण बहुत हो सत्त्वगुण बहुत ही थोड़ा हो कुछ तमोगुण हो, मन में हर्ष और भय हो, यह द्वापर का धर्म है॥2॥

*** तामस बहुत रजोगुण थोरा। कलि प्रभाव बिरोध चहुँ ओरा॥ बुध जुग धर्म जानि मन माहीं। तजि अधर्म रति धर्म कराहीं॥3॥

भावार्थ:-

तमोगुण बहुत हो रजोगुण थोड़ा हो, चारों ओर वैर-विरोध हो, यह कलियुग का प्रभाव है। पंडित लोग युगों के धर्म को मन में ज्ञान (पहचान) कर, अधर्म छोड़कर धर्म में प्रीति करते हैं॥3॥

*** काल धर्म नहीं ब्यापहिं ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही॥ नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापइ माया॥4॥

भावार्थ:-

जिसका श्री रघुनाथजी के चरणों में अत्यंत प्रेम है, उसको कालधर्म (युगधर्म) नहीं व्यापते। हे पक्षीराज! नट (बाजीगर) का किया हुआ कपट चरित्र (इंद्रजाल) देखने वालों के लिए बड़ा विकट (दुर्गम) होता है, पर नट के सेवक (जंभूरे) को उसकी माया नहीं व्यापती॥4॥

दोहा :

*** हरि माया कृत दोष गुन बिनु हरि भजन न जाहिं। भजिअ राम तजि काम सब अस बिचारि मन माहिं॥104 क॥

भावार्थ:-

श्री हरि की माया के द्वारा रचे हुए दोष और गुण श्री हरि के भजन बिना नहीं जाते। मन में ऐसा विचार कर, सब कामनाओं को छोड़कर (निष्काम भाव से) श्री रामजी का भजन करना चाहिए॥104 (क)॥

*** तेहिं कलिकाल बरष बहु बसेउँ अवध बिहगेस। परेउ दुकाल बिपति बस तब में गयउँ बिदेस॥104 ख॥

भावार्थ:-

हे पक्षीराज! उस कलिकाल में मैं बहुत वर्षों तक अयोध्या में रहा। एक बार वहाँ अकाल पड़ा तब मैं विपत्ति का मारा विदेश चला गया॥104 (ख)॥

चौपाई :

*** गयउँ उजेनी सुनु उरगारी। दीन मलीन दरिद्र दुखारी॥ गएँ काल कछु संपति पाई। तहँ पुनि करउँ संभु सेवकाई॥1॥

भावार्थ:-

हे सर्पों के शत्रु गरुड़जी! सुनिए, मैं दीन, मलिन (उदास), दरिद्र और दुःखी होकर उज्जैन गया। कुछ काल बीतने पर कुछ संपत्ति पाकर फिर मैं वहीं भगवान् शंकर की आराधना करने लगा॥1॥

*** बिप्र एक बैदिक सिव पूजा। करइ सदा तेहि काजु न दूजा॥ परम साधु परमारथ बिंदक। संभु उपासक नहिं हरि निंदक॥2॥

भावार्थ:-

एक ब्राह्मण वेदविधि से सदा शिवजी की पूजा करते, उन्हें दूसरा कोई काम न था। वे परम साधु और परमार्थ के ज्ञाता थे, वे शंभु के उपासक थे, पर श्री हरि की निंदा करने वाले न थे॥2॥

*** तेहि सेवउँ में कपट समेता। द्विज दयाल अति नीति निकेता॥ बाहिज नम्र देखि मोहि साईं। बिप्र पढ़ाव पुत्र की नाईं॥3॥

भावार्थ:-

मैं कपटपूर्वक उनकी सेवा करता। ब्राह्मण बड़े ही दयालु और नीति के घर थे। हे स्वामी! बाहर से नम्र देखकर ब्राह्मण मुझे पुत्र की भाँति मानकर पढ़ाते थे॥3॥

*** संभु मंत्र मोहि द्विजबर दीन्हा। सुभ उपदेस बिबिधि बिधि कीन्हा॥ जपउँ मंत्र सिव मंदिर जाई। हृदयँ दंभ अहमिति अधिकाई॥4॥

भावार्थ:-

उन ब्राह्मण श्रेष्ठ ने मुझको शिवजी का मंत्र दिया और अनेकों प्रकार के शुभ उपदेश किए। मैं शिवजी के मंदिर में जाकर मंत्र जपता। मेरे हृदय में दंभ और अहंकार बढ़ गया॥4॥

दोहा :

*** मैं खल मल संकुल मति नीच जाति बस मोह। हरि जन द्विज देखें जरउँ करउँ बिष्णु कर द्रोह॥105 क॥

भावार्थ:-

मैं दुष्ट, नीच जाति और पापमयी मलिन बुद्धि वाला मोहवश श्री हरि के भक्तों और द्विजों को देखते ही जल उठता और विष्णु भगवान् से द्रोह करता था॥105 (क)॥ [अगला पेज...](#)